

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 2 अध्याय 1: ध्यान और विराट् रूप

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

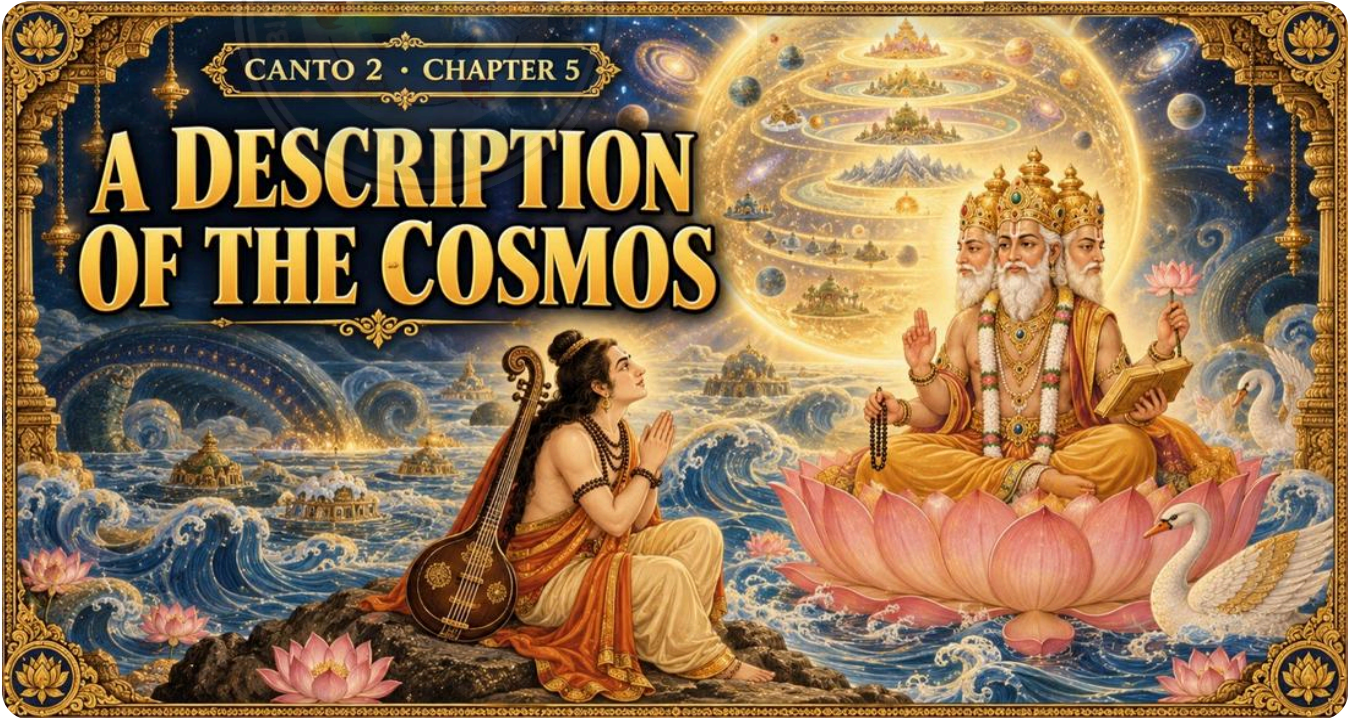
श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



गंगा-तट पर सम्मानपूर्ण आसन पर विराजमान युवा मुनि श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ करते हैं — वही कथा जो आगे चलकर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतम् बन जाती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम द्वितीय स्कन्ध में प्रवेश करते हैं, और प्रथम स्कन्ध के अन्त में जो उत्तर देने का वचन दिया गया था, वह अन्ततः आरम्भ होता है। मृत्यु से सात दिन दूर राजा परीक्षित ने मुनि श्रीशुकदेव गोस्वामी से एक ही उत्कट प्रश्न पूछा था — मरणासन्न पुरुष को क्या करना चाहिए, और सबको क्या सुनना, जपना और स्मरण करना चाहिए? श्रीशुकदेव का उत्तर यहीं से आरम्भ होता है — पहले भगवान् की कथा-श्रवण के परम महत्त्व से, फिर ध्यान की एक क्रमबद्ध विधि से, और अन्त में भगवान् के विराट् रूप — सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही भगवान् का शरीर बताने वाले भव्य वर्णन से।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 2 (द्वितीय स्कन्ध) — द्वितीय स्कन्ध का प्रथम अध्याय
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: मृत्यु-काल में की जाने वाली ध्यान-साधना तथा भगवान् के विराट् (ब्रह्माण्डीय) रूप — विराट् पुरुष — का श्रीशुकदेव द्वारा प्रस्तुत वर्णन
- मुख्य वक्ता: श्रीसुक (श्रीशुकदेव गोस्वामी), अपनी कथा जारी रखते हुए; राजा परीक्षित, जो इस अध्याय का केन्द्रीय प्रश्न पूछते हैं
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित, और उनके माध्यम से नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: गंगा का तट, जहाँ परीक्षित अपने अन्तिम दिनों में उपवास पर बैठे हैं
- केन्द्रीय विषय: भगवान् की कथा-श्रवण का परम महत्त्व; इन्द्रियों को समेटकर मन को भगवान् के रूप में स्थिर करने की योग-विधि; तथा भगवान् के विराट् रूप का विस्तृत वर्णन
- मुख्य श्लोक-परास: स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 1–39
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

प्रथम स्कन्ध के अन्त का सन्दर्भ

प्रथम स्कन्ध का समापन राजा परीक्षित के साथ हुआ था, जो सात दिनों में मृत्यु के शाप से बँधे, युग के श्रेष्ठतम ऋषियों के मध्य गंगा-तट पर बैठे थे। जब युवा अवधूत श्रीशुकदेव गोस्वामी बिना बुलाए वहाँ पधारे — आत्म-तृप्त, अन्तर्ज्ञान से देदीप्यमान — तो समागत ऋषिगण उनके सम्मान में खड़े हो गए, और राजा ने उनके चरणों में प्रणाम किया। वहीं परीक्षित ने अपना प्रश्न पूछा — मृत्यु के कगार पर खड़े प्राणी को क्या करना शेष रहता है? सबको क्या सुनना, जपना, पूजना, स्मरण करना और किससे बचना चाहिए? प्रथम स्कन्ध का समापन श्रीशुकदेव के उत्तर देने की तैयारी के साथ हुआ। द्वितीय स्कन्ध — और यह अध्याय — वही उत्तर है, जो अब आरम्भ होता है।

कथा-श्रवण सर्वोपरि क्यों है

श्रीशुकदेव अपनी बात विधि से नहीं, अपितु स्वयं प्रश्न की प्रशंसा से आरम्भ करते हैं, और राजा से कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत् के कल्याण हेतु पूछा गया यह प्रश्न आत्मज्ञानियों द्वारा स्वीकृत तथा सुनने योग्य सभी विषयों में सर्वोपरि है।

श्रीशुक उवाच

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ।

आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca variyān eṣa te praśnaḥ kṛto loka-hitaṁ nṛpa ātmavit-sammataḥ puṁsāṁ śrotavyādiṣu yaḥ paraḥ

अर्थ: श्रीशुक बोले — हे राजन्, आपका यह प्रश्न, जो सम्पूर्ण जगत् के कल्याण हेतु किया गया है, अत्यन्त उत्तम है। यह आत्मज्ञानियों द्वारा स्वीकृत है और सुनने योग्य समस्त विषयों में सर्वोच्च है। (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 1)

साधारण गृहस्थों के पास, श्रीशुकदेव आगे कहते हैं, सुनने के लिए हजारों विषय होते हैं — परन्तु ये उन लोगों की चिन्ताएँ हैं जो आत्म-तत्त्व से अनजान हैं, जिनकी रातें निद्रा या भोग में और दिन धन-कमाने तथा परिवार के पालन-पोषण में व्यतीत होते हैं। शरीर, सन्तान और पत्नी जैसे नश्वर सम्बन्धों के मोह में बँधकर ऐसा पुरुष अपने सामने खड़े अन्त को भी नहीं देख पाता। इसके विपरीत श्रीशुकदेव एक स्पष्ट विकल्प रखते हैं:

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥ ५ ॥

tasmād bhārata sarvātmā bhagavān īśvaro hariḥ śrotavyaḥ kīrtitavyaś ca smartavyaś cecchatābhayaṁ

अर्थ: अतः हे भारतवंशी, जो कोई भी सम्पूर्ण भय से मुक्त होना चाहे, उसे परमात्मा — सर्वस्वरूप भगवान् श्रीहरि — की कथा सुननी, कीर्तन करना तथा स्मरण करना चाहिए। (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 5)

जीवन के अन्तिम क्षण में श्रीनारायण का स्मरण होना ही मनुष्य-जन्म का सर्वोच्च फल है, चाहे वह ज्ञान से, योगाभ्यास से, या अपने धर्म के प्रति निष्ठा से ही क्यों न प्राप्त हुआ हो। बड़े-बड़े संन्यासी भी श्रीहरि के गुणगान में ही आनन्द पाते हैं।

श्रीशुकदेव एक व्यक्तिगत बात साझा करते हैं — उन्होंने वेदों के समान पावन यह पुराण द्वापर युग के अन्त में अपने पिता, महर्षि द्वैपायन व्यास से पढ़ा था — और परब्रह्म में स्थित होते हुए भी उनका हृदय श्रीकृष्ण की लीलाओं से पुनः मोहित हो गया। परीक्षित भगवान् विष्णु के भक्त हैं, अतः श्रीशुकदेव उन्हें वही पुराण सुनाने का वचन देते हैं, क्योंकि श्रद्धापूर्वक इसे सुनने से श्रीकृष्ण के प्रति निष्काम प्रेम शीघ्र जाग उठता है। संसार से विरक्त जनों के लिए तथा परमात्मा में लीन सिद्ध पुरुषों के लिए समान रूप से, श्रीहरि के नाम-कीर्तन को ही साधन और साध्य — दोनों घोषित किया गया है:

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।

योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥

etan nirvidyamānānām icchatām akuto-bhayam yoginām nṛpa nirṇītaṁ harer nāmānukīrtanam

अर्थ: हे राजन्, महापुरुषों ने यह निश्चित किया है कि भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन ही निर्भय एवं निश्चित सफलता का मार्ग है — चाहे वह समस्त इच्छाओं से मुक्त विरक्त पुरुष हो, चाहे सांसारिक कामनाओं से भरा पुरुष हो, अथवा आत्मज्ञान में तृप्त योगी। (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 11)

एक सजग क्षण का मूल्य

श्रीशुकदेव अब इस बात को और तीक्ष्ण करते हैं — अचेत भाव से व्यतीत हुए दीर्घ वर्षों से क्या लाभ? पूर्ण सजगता के साथ परम कल्याण में लगाया गया एक क्षण भी उससे कहीं अधिक मूल्यवान् है। वे राजर्षि खट्वांग का उदाहरण देते हैं, जिन्हें बताया गया कि उनके पास केवल एक क्षण शेष है — और उसी क्षण में उन्होंने सब कुछ त्यागकर भयहर श्रीहरि की शरण ग्रहण कर ली।

फिर वह वचन आता है जिसने अवश्य ही परीक्षित के हृदय को छू लिया होगा — श्रीशुकदेव स्पष्ट रूप से स्मरण कराते हैं कि उनका शेष जीवन ठीक सात दिन का है, और उन्हें अपने परम कल्याण के लिए इस समय का उपयोग करने का आग्रह करते हैं — एक गुरु सत्य को बिना छिपाए कह रहा है, क्योंकि राजा ने स्वयं सत्य ही माँगा है।

[चित्र 1: images/sbw-c2c01-01-khatvanga-refuge.jpg — यहाँ लगाएँ]

राजर्षि खट्वांग, यह जानकर कि उनके पास जीवन का केवल एक क्षण शेष है, तत्काल सब कुछ त्यागकर श्रीहरि के चरणों की शरण लेते हैं (श्लोक 13)।

मृत्यु का सामना कैसे करें: ध्यान का मार्ग

आगे एक संक्षिप्त, व्यावहारिक साधना बताई गई है। मृत्यु की घड़ी आने पर, श्रीशुकदेव सिखाते हैं, मनुष्य को समस्त भय त्यागकर वैराग्य की तलवार से शरीर तथा उससे जुड़े सम्बन्धों के प्रति मोह को काट देना चाहिए। पूर्ण आत्म-संयम के साथ साधक को गृहस्थी छोड़कर, पवित्र जल में स्नान कर, किसी स्वच्छ एकान्त तथा विधिवत् स्थान पर बैठना चाहिए। वहाँ, प्रणव — अ, उ, म — इन तीन अक्षरों से युक्त पवित्र ॐकार का मन-ही-मन जप करते हुए तथा श्वास को नियमित करते हुए, मन भीतर की ओर खिंचकर स्थिर हो जाता है।

बुद्धि को सहायक बनाकर साधक इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है और धीरे-धीरे, चंचल मन को भगवान् के दिव्य रूप के एक-एक अंग पर स्थिर करता है — यहाँ तक कि मन इतना तल्लीन हो जाए कि उसमें किसी अन्य विचार के लिए स्थान न रहे। श्रीशुकदेव कहते हैं कि यही भगवान् विष्णु की परम वास्तविकता है, जिसे प्राप्त कर मन दिव्य प्रेम के आनन्द से भर उठता है। यदि रजोगुण के प्रभाव से मन विचलित हो या

तमोगुण से आच्छादित हो जाए, तो विवेकी साधक उसे निरन्तर एकाग्रता से वश में करे, जो अकेली ही इन दोनों दोषों को नष्ट करती है। जब यह एकाग्रता परिपक्व होती है, तब योगी अपने आनन्दमय लक्ष्य — भगवान् — का साक्षात्कार कर योग को प्राप्त होता है, जिसका लक्षण है भक्ति — प्रेमपूर्ण भक्ति।

[चित्र 2: images/sbw-c2c01-02-yogi-meditation-limbs.jpg — यहाँ लगाएँ]

एक ध्यानस्थ योगी, इन्द्रियों को समेटकर तथा श्वास को शान्त कर, श्लोक 18-21 में बताई विधि के अनुसार भगवान् के रूप के एक-एक अंग पर अपना मन स्थिर करता है।

राजा का प्रश्न

परीक्षित इस बात को सामान्य रूप में नहीं छोड़ते। वे ठीक वैसा ही प्रश्न पूछते हैं जैसा एक सच्चा जिज्ञासु पूछता है — यह एकाग्रता किस वस्तु पर करनी चाहिए, और किस विधि से मन की मलिनता शीघ्रता से दूर होती है?

राजोवाच

यथा सन्धार्यते ब्रह्मन् धारणा यत्र सम्मता ।

यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२ ॥

rājovāca yathā sandhāryate brahman dhāraṇā yatra sammata yādṛśī vā hared āśu puruṣasya mano-malam

अर्थ: राजा ने कहा — हे ब्रह्मन्, यह एकाग्रता किस प्रकार धारण की जाती है, और किस वस्तु पर इसे स्वीकृत माना गया है? तथा किस प्रकार की एकाग्रता से मनुष्य के मन की मलिनता शीघ्रता से दूर होती है? (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 22)

भगवान् के स्थूल रूप पर मन को स्थिर करना

श्रीशुक उवाच

जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ।

स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्विया ॥ २३ ॥

śrī-śuka uvāca jitāsano jita-śvāso jita-saṅgo jitendriyaḥ sthūle bhagavato rūpe manaḥ sandhārayed dhiyā

अर्थ: श्रीशुक ने उत्तर दिया — आसन तथा श्वास पर विजय प्राप्त कर, आसक्ति तथा इन्द्रियों को वश में कर, बुद्धि की सहायता से मन को भगवान् के स्थूल रूप पर स्थिर करना चाहिए। (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 23)

वह “स्थूल रूप,” श्रीशुकदेव समझाते हैं, भगवान् का विराट् अथवा ब्रह्माण्डीय शरीर है — स्थूल में भी परम स्थूल — जिसमें यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् अपने भूत, वर्तमान तथा भविष्य के रूप में दिखाई देता है। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व तथा प्रकृति — इन सात आवरणों से आवृत इस विराट् पुरुष के रूप में यह महान् सत्ता ही साधक की एकाग्रता का विषय बनती है।

विराट् रूपः अंग-प्रत्यंग में वर्णित एक ब्रह्माण्ड

आगे सम्पूर्ण भागवत की सबसे विलक्षण उक्तियों में से एक आती है — सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भगवान् के शरीर पर आरोपण। पाताल-लोक उनके चरण-तल हैं, तथा क्रमिक अधोलोक उनकी एड़ियों, टखनों, पिंडलियों, घुटनों और जंघाओं के रूप में उठते हैं। पृथ्वी का धरातल उनकी कटि है; उससे ऊपर का लोक, उनकी नाभि। इन्द्रलोक उनका वक्षःस्थल बनाता है, ऊपरी लोक उनका कण्ठ और मुख, तथा सर्वोच्च लोक सत्यलोक उनके सहस्र मस्तकों का मुकुट।

[चित्र 3: images/sbw-c2c01-03-cosmic-form-virat-purusha.jpg — यहाँ लगाएँ]

विराट् पुरुष — भगवान् का वह ब्रह्माण्डीय रूप — जिसमें अधोलोक उनके चरण हैं, पृथ्वी उनकी कटि, स्वर्गलोक उनका वक्ष और मुख, तथा सर्वोच्च लोक उनके मस्तक का मुकुट है (श्लोक 25-31)।

देवगण उनकी भुजाएँ बनते हैं; दिशाएँ उनके कान, शब्द उनकी श्रवण-शक्ति। अश्विनीकुमार उनके नासिका-छिद्र, गन्ध उनकी घ्राण-शक्ति, तथा प्रज्वलित अग्नि उनका मुख है। आकाश उनके नेत्र, सूर्य उनकी दृष्टि-शक्ति, दिन-रात उनकी पलकें; वेद उनके मस्तक का मुकुट, यम उनके दाँत, माया उनकी मुस्कान। लज्जा उनका ऊपरी ओष्ठ, लोभ निचला; धर्म उनका वक्षःस्थल, अधर्म उनकी पीठ; प्रजापति उनकी जनन-शक्ति, समुद्र उनकी उदर-गुहा, पर्वत उनकी अस्थियाँ।

नदियाँ उनकी शिराएँ हैं, वृक्ष उनके केश, वायु उनका श्वास, तथा काल उनकी गति। मेघ उनके मस्तक के केश हैं, सन्ध्या उनका वस्त्र, चन्द्रमा उनका मन। महत्तत्त्व उनकी चेतना है, और रुद्र उनका अहंकार; अश्व, खच्चर, ऊँट तथा हाथी उनके नख हैं, और वन के हिंस्र पशु उनकी कटि-मेखला में विराजते हैं। स्वायम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं, मानवता उनका निवास-स्थान; विविध पक्षियों की छटा उनकी कलात्मक प्रतिभा दर्शाती है, गाते हुए गन्धर्व और विद्याधर उनकी लय-कुशलता के प्रतीक हैं, तथा दानवों की सेनाएँ भी उनके ही अद्वितीय पराक्रम को प्रकट करती हैं। ब्राह्मण उनका मुख, क्षत्रिय उनकी भुजाएँ, वैश्य उनकी जंघाएँ, तथा शूद्र उनके चरण हैं। विभिन्न देवताओं के नाम से किए जाने वाले समस्त यज्ञ वस्तुतः उनका ही कर्म हैं — क्योंकि उनसे परे न कोई देवता है, न कोई अर्पण, न कोई उपासक।

यह विशालता वर्णित करने के पश्चात् श्रीशुकदेव अन्तिम निष्कर्ष देते हैं — इसी स्थूलतम, प्रत्यक्ष रूप पर पहले बुद्धि की सहायता से मन को एकाग्र करना चाहिए, क्योंकि इससे परे कुछ भी नहीं है। और जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला स्वयं को स्वप्न में अनेक रूपों में देखता है, उसी प्रकार वही एक सर्वसाक्षी आत्मा सबकी बुद्धियों के माध्यम से सब कुछ अनुभव करता है। साधक को इसी एक सत्यस्वरूप, आनन्द के भण्डार, में स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर देना चाहिए, और अन्य किसी वस्तु में आसक्त नहीं होना चाहिए — क्योंकि ऐसी आसक्ति ही आत्मा के पतन का कारण बनती है।

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व

आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ।

तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत

नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥ ३९ ॥

*sa sarva-dhī-vṛtty-anubhūta-sarva ātmā yathā svapna-janekṣitaikaḥ taṁ satyam ānanda-nidhiṁ
bhajeta nānyatra sajjed yata ātma-pātaḥ*

अर्थ: वे ही आत्मा हैं, जो समस्त प्राणियों की सभी प्रकार की बुद्धि-वृत्तियों के द्वारा अनुभव किए जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति अपने ही स्वप्न में अनेक वस्तुएँ देखता है। मनुष्य को केवल उन्हीं की, उस सच्चे आनन्द-निधि की, उपासना करनी चाहिए, और किसी अन्य वस्तु में आसक्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसी आसक्ति ही आत्मा के पतन का कारण है। (स्कन्ध 2, अध्याय 1, श्लोक 39)

इस श्लोक के साथ अध्याय का समापन होता है। कोलोफन में कहा गया है — “इस प्रकार द्वितीय स्कन्ध के इस प्रथम अध्याय की समाप्ति होती है, जिसमें अन्य बातों के साथ महान् सत्ता के विराट् शरीर का वर्णन हुआ है, इस महान् एवं गौरवशाली भागवत-पुराण में, जिसे परमहंस-संहिता भी कहा जाता है।”

[चित्र 4: images/sbw-c2c01-04-parikshit-asks-concentration.jpg — यहाँ लगाएँ]

राजा परीक्षित, गंगा-तट पर श्रीशुकदेव गोस्वामी के समक्ष बैठे हुए, यह पूछते हैं कि मन की एकाग्रता किस प्रकार तथा किस वस्तु पर धारण की जानी चाहिए (श्लोक 22)।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. भगवान् की कथा-श्रवण सुनने योग्य सभी विषयों में सर्वोच्च है। मानव-मन को आकर्षित करने वाले अनगिनत विषयों में से श्रीशुकदेव श्रीहरि की कथाओं तथा नामों को सबसे ऊपर रखते हैं (श्लोक 1-11)।
2. एक सजग क्षण, विस्मृति में बिताए पूरे जीवन से बढ़कर है। खट्वांग का उदाहरण दिखाता है कि सही ढंग से उपयोग किया गया एक क्षण भी आत्मा की मुक्ति सुनिश्चित कर सकता है (श्लोक 12-13)।
3. ध्यान एक व्यावहारिक, सीखने योग्य साधना है। स्थिर आसन, नियमित श्वास, समेटी हुई इन्द्रियाँ, तथा भगवान् के रूप के एक-एक अंग पर धैर्यपूर्वक स्थिर किया गया मन — यह एक ठोस मार्ग है (श्लोक 16-21)।
4. सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पहले से ही उनका शरीर है। विराट् पुरुष की शिक्षा यह प्रकट करती है कि पृथ्वी, आकाश, समुद्र, पर्वत और स्वर्ग सदा ही उस एक सत्ता के अंग रहे हैं जिसे मन खोजने का प्रयास कर रहा है (श्लोक 25-37)।
5. उनसे परे कुछ भी नहीं है, अतः हृदय को अन्य किसी वस्तु से आसक्त नहीं होना चाहिए। अन्तिम श्लोक इस बात को स्पष्ट कर देता है — उनसे परे किसी भी वस्तु में आसक्ति ही आत्मा के पतन का कारण है (श्लोक 39)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

श्रीशुकदेव जिस क्रम को चुनते हैं, उसमें एक शान्त आश्वासन छिपा है। वे भव्य ब्रह्माण्डीय वर्णन से आरम्भ नहीं करते; वे एक साधारण अवलोकन से आरम्भ करते हैं — कि हमारी रातें निद्रा में और दिन धन-कमाने में बीत जाते हैं, और हमारे वर्ष यूँ ही सरक जाते हैं जबकि हम वास्तव में महत्त्वपूर्ण बात से अनजान रहते हैं। इस सामान्य विस्मृति को नाम देने के बाद ही वे उपाय बताते हैं — भगवान् की कथा सुनो, उनका स्मरण करो, और जब मन तैयार हो, तो उन्हें सर्वत्र देखना सीखो — अपने पैरों के नीचे की भूमि से आरम्भ करके। विराट् रूप कोई ऐसा गूढ़ सिद्धान्त नहीं जो केवल उन्नत योगियों के लिए हो; यह एक शिक्षा है कि जिस पृथ्वी पर हम चलते हैं, जिन नदियों का जल हम पीते हैं, और हमारे फेफड़ों में जो श्वास बह रही है — यह सब पहले से ही एक जीवन्त, दिव्य सत्ता के अंग हैं। आज, चाहे एक निश्चिन्त श्वास भर के लिए ही सही, इसका स्मरण करना — ठीक वहीं से आरम्भ करना है जहाँ से श्रीशुकदेव ने परीक्षित को आरम्भ करने को कहा था — मन को क्षणभर के लिए भी भगवान् की ओर एकत्र और मोड़कर।

[चित्र 5: images/sbw-c2c01-05-daily-remembrance.jpg — यहाँ लगाएँ]

उषाकाल में स्मरण का एक शान्त क्षण — ऊपर आकाश, नीचे पृथ्वी, तथा भीतर श्वास — सब कुछ इस अध्याय में वर्णित उसी एक विराट् रूप में स्थित।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कुछ शान्त क्षण निकालिए। सुखपूर्वक बैठिए, श्वास को स्थिर होने दीजिए, और इस अध्याय में बताई विधि के अनुसार अपना ध्यान दिन की हलचल से धीरे-धीरे समेट लीजिए। फिर, मृदुतापूर्वक पवित्र नाम — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” — का उच्चारण कीजिए, और एक क्षण के लिए विचार कीजिए — आपके ऊपर का आकाश, आपके नीचे की पृथ्वी, आपकी साँसों में बहती वायु — यह सब इसी अध्याय में वर्णित उस एक विराट् रूप में समाहित है। यह स्मरण, चाहे कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, आज आपका अर्पण बने।

उपसंहार

द्वितीय स्कन्ध का प्रथम अध्याय वह स्थान है जहाँ से श्रीशुकदेव का वचनबद्ध उत्तर वास्तव में आरम्भ होता है। वे भगवान् की महिमा के कथा-श्रवण को अन्य सभी विषयों से ऊपर रखकर आरम्भ करते हैं, खट्वांग के एक सजग क्षण के उदाहरण से इस बिन्दु को तीक्ष्ण करते हैं, और इन्द्रियों को समेटकर भगवान् के रूप पर मन स्थिर करने की साधना का क्रमवार वर्णन करते हैं। जब परीक्षित यह ठीक-ठीक पूछते हैं कि यह किस प्रकार किया जाए, तब श्रीशुकदेव विराट् पुरुष की भव्य शिक्षा से उत्तर देते हैं — सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को, लोक-दर-लोक तथा अंग-दर-अंग, भगवान् के ही शरीर के रूप में वर्णित करते हुए। अध्याय का समापन एक व्यावहारिक शिक्षा के साथ होता है — क्योंकि उनसे परे कुछ भी नहीं है, अतः साधक को केवल अन्यत्र देखना बन्द करना है। एक मरणासन्न राजा के उत्कट प्रश्न से जो आरम्भ हुआ था, वह इस अध्याय में भगवान्, ब्रह्माण्ड तथा आत्मा — इन तीनों पर भागवत की सम्पूर्ण शिक्षा का द्वार बन जाता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), द्वितीय स्कन्ध, प्रथम अध्याय, पृष्ठ 85–89।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी भी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका की प्रतिकृति नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-2-adhyay-1-dhyan-aur-virat-roop.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

